अध्याय-1
हिंदी पत्रकारिता और 'कल्पना' पत्रिका

1.1 हिंदी पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास

1.2 'कल्पना' पत्रिका का प्रारंभ और विकास

1.3 पत्रिका का उद्देश्य संपादक की नजर से

1.4 भाषा का सवाल और 'कल्पना'

1.1 हिंदी पत्रकारिता का संक्षिप्त इतिहास

'पत्रकारिता' अंग्रेजी के जर्नलिज्म (Journalism) शब्द का अनुवाद है। 'जर्नलिज्म' शब्द 'जर्नल' से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- 'दैनिक'। प्रारंभ में इसका उपयोग दैनंदिन की गतिविधियों, प्रशासनिक कार्यों के दैनिक विवरण के रूप में होता था लेकिन वर्तमान समय में पत्रकारिता आधुनिक युगबोध एवं जन-संवेदनाओं को संप्रेषित करने का एक सशक्त माध्यम है। महात्मा गांधी ने पत्रकारिता के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए लिखा है- "पत्रकारिता का एक उद्देश्य जनता की इच्छाओं-विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है, दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना है और तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को निर्भयतापूर्वक प्रकट करना है।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज पत्रकारिता अपने पुराने अर्थों तक सीमित न होकर पूरे मानव जीवन को संपूर्णता के धरातल पर अभिव्यक्त करने का माध्यम बन गई है।

हिंदी पत्रकारिता का उद्भव 30 मई, 1826 में (कलकत्ता) से प्रकाशित पत्र 'उदंत मार्तंड' से माना जाता है जिसका संपादन पं. युगल किशोर शुक्ल ने किया था। यह पत्र उन्होंने भारतीयों के हित हेतु निकाला था। 'उदंत-मार्तंड' (साप्ताहिक) प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता था। इसमें सरकारी अफसरों की नियुक्ति, स्थानांतरण की सूचनाएँ, जहाजों की समय सारणी, विदेश चर्चा, साहित्यिक तथा सार्वजनिक नोटिस आदि प्रमुख रूप से प्रकाशित होते थे। इस प्रकार इसका विषय क्षेत्र अत्यंत व्यापक था। मूलत: इस समाचार पत्र का उद्देश्य हिंदी भाषी लोगों के ज्ञान में वृद्धि करना रहा है। शुक्ल जी की भाषा-बहुज्ञता पर अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है- "युगलकिशोर जी बहुभाषज्ञ थे। यह उनका भारी गुण था और यद्यपि उनका 'उदंत मार्तंड' डेढ़ वर्ष निकला तथापि प्रूफ की भूलें जो प्रेस में बराबर होती रहती हैं, उनका ध्यान रखकर हमें यह नि:संकोच कहना पड़ता है कि 'उदंत मार्तंड' हिंदी का पहला समाचार पत्र होने पर भी भाषा और विचारों की दृष्टि से सुसंपादित पत्र था।"[2] इसके प्रकाशन की पृष्ठभूमि में हिंदी में पत्र प्रकाशन एवं भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने की भावना थी। दुर्भाग्यवश 79 अंकों के प्रकाशन के बाद आर्थिक संकट के कारण यह पत्र 4 दिसंबर, 1827 को हमेशा के लिए बंद हो गया। 'उदंत मार्तंड'

---

[1] हिंदी पत्रकारिता रीति, नीति एवं वृत्ति: डॉ. जितेंद्र वत्स, पृ.-11

[2] पत्रकारिता के सिद्धांत: रमेशचंद्र त्रिपाठी , पृ.- 265

का प्रकाशन बंद होने के दो वर्ष बाद ही 10 मई, 1829 को राजाराम मोहन राय ने 'बंगदूत' साप्ताहिक पत्र निकाला। यह पत्र एक साथ बांग्ला, हिंदी और फारसी में प्रकाशित हुआ। इस पत्र की यह विशेषता थी कि विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने वाली पाठ्य-सामग्री एक-दूसरे का अनुवाद न होकर स्वतंत्र होती थी। इसमें राष्ट्रीय चेतना की प्रमुखता एवं जन-जागरण के स्तर की प्रधानता थी।

पत्रकारिता का दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बनारस माना जाता है। उत्तर प्रदेश से प्रकाशित होने वाला 'बनारस अखबार' पहला हिंदी साप्ताहिक पत्र था जो 1845 में काशी से प्रकाशित हुआ। इसके संस्थापक गोविंद नाथ थत्ते तथा संचालक शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' थे। 'बनारस अखबार' की भाषा तत्कालीन प्रशासन और कचहरियों में प्रयोग होने वाली सरकारी भाषा थी जो सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा से नितांत भिन्न थी। यह अखबार हिंदी में प्रकाशित होता था किंतु इस अखबार में अरबी-फारसी शब्दों की भरमार होती थी। 'बनारस अखबार' की तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप विशुद्ध हिंदी में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, जैसे-'सुधाकर' (1850), 'बुद्धिप्रकाश' (1852) आदि। 11 जून, 1846 को 'मार्तंड' नाम से एक साप्ताहिक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित हुआ जिसमें फारसी बांग्ला, अंग्रेजी, उर्दू तथा हिंदी भाषा में सामग्री प्रकाशित होती थी। 'मार्तंड' के संपादक नसरूद्दीन थे। 'बनारस सुधाकर' नाम से दूसरा पत्र 1850 में प्रकाशित हुआ इसके संपादक एवं प्रकाशक श्री तारामोहन मैत्र थे। तीन वर्षों तक यह पत्र बांग्लाएवं हिंदी में प्रकाशित हुआ, 1853 से यह केवल हिंदी में छपने लगा। इसके अलावा1848 में मध्य-प्रदेश से 'मालवा अखबार' हिंद प्रदेश से 'सुधाकर' (1850) आगरा से 'बुद्धिप्रकाश' (1852) आदि भी हिंदी-पत्र के रूप में प्रकाशित हुए जिससे हिंदी पत्रकारिता को एक गति मिली।

हिंदी का प्रथम दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' सन् 1854 में प्रकाशित हुआ। यह पत्र हिंदी और बांग्ला दोनों भाषाओं में एक साथ प्रकाशित होता था। इसके संपादक श्री श्यामसुंदर थे। यह करीब 14 वर्षों तक प्रकाशित हुआ। यह अखबार अपने पूरे दौर में राष्ट्रीय चेतना का पोषक था परंतु समाज की अनेक समस्याओं के प्रति इसका रवैया तटस्थ था। स्मरणीय है कि 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी बेहतर भूमिका निभाई इसमें से 'समाचार-सुधावर्षण' एवं 'पयामे आजादी' (दिल्ली) का नाम प्रमुख है। 'प्रजा हितैषी' (1855) पत्र का प्रकाशन भी इसी युग की देन है जिसके संपादक राजा लक्ष्मण प्रसाद सिंह थे। इसके अतिरिक्त मनसुख लाल द्वारा अहमदाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'धर्मप्रकाश', हाकिम जवाहर लाल के

निर्देशन में 'ज्ञान-प्रकाश' (1861-आगरा),एवं 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका हिंदी पत्रकारिता के विकास में सहयोगी रही हैं।

हिंदी पत्रकारिता का द्वितीय चरण जिसे भारतेंदु युग के नाम से जाना जाता है। इसे स्वातंत्र्यपूर्व या जागरण काल भी कहा जाता है। इस युग की पत्रकारिता के संदर्भ में रचनाभोला 'यामिनी' ने लिखा है- "भारतेंदु युगीन पत्रकारिता केवल पत्रकारिता के इतिहास का अध्याय नहीं वह भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास का भी ज्वलंत अध्याय है।"[1]

भारतेंदु-युगीन पत्रकारों के समक्ष एक महान आदर्श था-देश को अंग्रेजी हुकूमत से मुक्ति दिलाना। उन्होंने 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्र मैंगजीन' एवं 'बाल-बोधिनी' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से समय और समाज की माँगों को ध्यान में रखकर अपने उद्देश्यों को पूरा करने की पुरजोर कोशिश की। 15 अगस्त, 1967 में काशी से भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कविवचन सुधा' मासिक पत्रिका का संपादन शुरू किया जो सन् 1875 में साप्ताहिक हो गया। इस पत्रिका का महत्त्व हिंदी में राष्ट्रीय भावों एवं हिंदी भाषा और पत्रकारिता को सहज जातीय रूप प्रदान कर पाठकों में अभिरुचि जागृत करने में रहा है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में- "भारतेंदु ने 'कविवचनसुधा' द्वारा हिंदी में निर्भीक पत्रकार कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले भी लोगों ने पत्र निकाले थे उनमें से कोई इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं लड़ा था।"[2]

'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन 1873 में काशी से ही हुआ। यह मासिक पत्रिका थी जिसका जून 1874 में नाम बदलकर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। जनवरी,1874 में भारतेंदु ने 'बाल-बोधिनी' का प्रकाशन आरंभ किया, जो प्रमुख रूप से नारी-जागरण के लिए संकल्पित था। भारतेंदु युग की पत्रिकाओं का विकास कई दिशाओं में होता गया। सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों से भी संबंधित तमाम पत्रिकाएँ जैसे- 'भारत बंधु' (1874), 'मित्र-विलास' (1877), 'सुगृहिणी' (1889) आदि इसी युग की देन है। बाल-विवाह तथा विधवा-विवाह के साथ-साथ पर्दा-प्रथा, स्त्री-शिक्षा आदि इन पत्र-पत्रिकाओं के मुख्य विषय वस्तु थे। इसी दौर में साहित्यिक पत्रिकाओं के रूप में 'हिंदी प्रदीप' (1877), 'आनंद कादंबिनी' (1881, प्रेमघन), 'ब्राह्मण' (1883), 'भारत मित्र' (1878, दुर्गा प्रसाद मिश्र) आदि भी प्रकाशित हुए। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कुरीतियों पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार

---

[1] हिंदी पत्रकारिता उद्भव और विकास: रचना भोला 'यामिनी', पृ.- 42

[2] राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता: डॉ. मीरा रानी बल, पृ.- 99-100

इन पत्रिकाओं में प्रमुखता से रहा है। डॉ. जितेंद्र वत्स के शब्दों में- "हिंदी पत्रकारिता ने 19वीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में अपने को इतना मजबूत कर लिया कि यह न केवल हिंदी भाषी प्रदेशों में अपितु दक्षिण भारत सहित विदेशों में भी अपने पैर जमा लिए। इसने साहित्य, राजनीति, धर्म-दर्शन जाति, बालोपयोगी और महिलापयोगी विषयों को आत्मसात कर अपनी महत्ता प्रमाणित कर दी और द्विवेदी युगीन पत्रकारिता का मार्ग प्रशस्त कर दिया।"[1]

हिंदी पत्रकारिता के अगले चरण में सन् 1900, का वर्ष, पत्रकारिता के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है जिसे हम द्विवेदी युग (1900 से 1920 तक) के नाम से भी जानते हैं। इस युग पर सर्वाधिक प्रभाव महावीर प्रसाद द्विवेदी और लोकमान्य तिलक का रहा है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार- "द्विवेदी जी के 'सरस्वती' संपादन का इतिहास अनेक आंदोलनों का इतिहास है। वह उनके व्यक्तित्व और तत्कालीन समाज के विकास का इतिहास भी कहा जा सकता है।"[2] इस दौर की सबसे महत्त्वपूर्ण पत्रिका थी- 'सरस्वती' (1900)। इसके संपादक मंडल में राधाकृष्ण दास, रत्नाकर, किशोरीलाल गोस्वामी और श्यामसुंदर दास आदि प्रमुख थे। सन् 1903 में इसका कार्य-भार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने संभाला जिससे हिंदी पत्रकारिता जगत में एक नई धारा का प्रवर्तन हुआ। उन्होंने 'सरस्वती' के माध्यम से साहित्य और भाषा दोनों को ही नया संस्कार और प्रौढ़ता देने का कार्य किया। इस पत्रिका के संबंध में प्रो. गुरुचरण सिंह ने लिखा है- "सरस्वती पत्रिका ने न केवल हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में, अपितु समग्र हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से कई मानदंड स्थापित किए। इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी के मानक रूप गढ़े गए और हिंदी साहित्य को परिष्कृत रूप में समृद्ध किया गया।"[3] लगभग इसी दौर में पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी के संपादकत्व में जयपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'समालोचक' (1902 मासिक) की प्रसिद्धि उनकी आलोचनात्मक दृष्टि के नाते महत्त्वपूर्ण रही। इस दौर में अन्य कई ऐसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई हैं जिन्होंने हिंदी पत्रकारिता को नए आयाम प्रदान किए। उनमें प्रमुख हैं- मदनमोहन मालवीय के संपादकत्व में प्रयाग से प्रकाशित पत्र 'अभ्युदय' (1907,मासिक), रूद्रदत्त शर्मा और सखाराम गणेश देउस्कर द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'हितवाणी' (1904), सुंदरलाल के संपादकत्व में प्रयाग से प्रकाशित 'कर्मयोगी' (1909,मासिक), कृष्णकांत मालवीय

---

[1] हिंदी पत्रकारिता रीति,नीति एवं वृत्ति. डॉ. जितेंद्र वत्स, पृ.-37

[2] हिंदी पत्रकारिता उद्भव और विकास: रचना भोला यामिनी, पृ.-58

[3] पत्रकारिता विधाएँ और आयाम: (सं.) अमरेंद्र कुमार, पृ.-160

के निर्देशन में प्रयाग से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'मर्यादा' (1909), गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा कानुपर से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' (1913), खंडवा से कालूराम के निर्देशन में दैनिक पत्र 'प्रभा' (1913), 'कलकत्ता समाचार' (1914, दैनिक), 'विश्वामित्र' (कलकत्ता, 1918, मासिक), देवकीनंदन खत्री और माधव प्रसाद मिश्र के सहयोग से काशी से प्रकाशित मासिक पत्र-'सुदर्शन' (1900), अंबिकाप्रसाद गुप्त के संपादकत्व में 'इंदु' (1909, मासिक), पटना से काशी प्रसाद जायसवाल द्वारा 'पाटलिपुत्र' (1914, मासिक), उमापति दत्त और यशोदानंदर अखौरी निर्देशन में 'देवनागर' (1907, मासिक) आदि।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस दौर की पत्रकारिता ने साहित्य को संपन्न और समृद्ध बनाने में पर्याप्त योगदान दिया है।

हिंदी पत्रकारिता का अगला कालखंड गांधी युगीन पत्रकारिता (छायावाद युगीन पत्रकारिता) के नाम से जाना जाता है। द्विवेदी युगीन पत्रकारिता की विविध आयामी धारा का अविरल प्रवाह गांधी-युगीन पत्रकारिता में भी जारी रहा। इस काल के प्रमुख पत्रों में जो संपादकीय लेख प्रकाशित होते थे वे बहुत वैविध्यपूर्ण थे । राष्ट्रीयता के धरातल पर एकता, अखण्डता, स्वतंत्रता और अस्मिता की पुनर्प्रतिष्ठाका उपक्रम भी इस दौर की पत्रिकाओं के केंद्र में था। इस युग की प्रमुख पत्रिकाएँ निम्न हैं- काशी से कृष्णकांत मालवीय, संपूर्णानंद एवं कुछ समय के लिए प्रेमचंद के निर्देशन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका-'मर्यादा', रामरख सहगल एवं चंडीप्रसाद हृदयेश के संपादकत्व में प्रयाग से प्रकाशित मासिक पत्र 'चाँद' (1923), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' द्वारा कानपुर से 'प्रभा' (मासिक), दुलारे लाल भार्गव द्वारा लखनऊ से 'माधुरी' (1922, मासिक) गोरखपुर से 'कल्याण' (1925), बनारसीदास द्वारा संपादित पत्रिका 'विशाल भारत' (1928, मासिक, लखनऊ), प्रेमचंद के संपादकत्व में बनारस से प्रकाशित मासिक पत्र 'हंस',(बाद में शिवदान सिंह चौहान एवं अमृतराय ने भी इसका संपादन किया), स्वामी माधवानंद द्वारा कलकत्ता से मासिक पत्र 'समन्वय' (1922) (बाद में निराला एवं गुलाबराय द्वारा संपादन), 1923 में कलकत्ता से 'मतवाला' (साप्ताहिक), जिसका संपादन क्रमशः महादेव प्रसाद सेठ, शिवपूजन सहाय और बाद में निराला ने भी किया। इसके बाद कुछ अन्य पत्र भी इसी दौर में प्रकाशित हुए उनमें प्रमुख है- शिवपूजन सहाय के निर्देशन में प्रकाशित पत्र 'जागरण', नंददुलारे वाजपेयी के संपादकत्व में 'भारत' (इलाहाबाद), माखनलाल चतुर्वेदी के निर्देशन में 'कर्मवीर' (जबलपुर), महात्मा गांधी के संपादकत्व में 'हिंदी नवजीवन' (1921), राजेंद्र के निर्देशन में 'देश'

(पटना, 1920), विष्णुराव पराड़कर के संपादकत्व में वाराणसी से प्रकाशित पत्र 'आज' (1920) आदि।

पत्रकारिता के अगले चरण को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता के नाम से जाना जाता है। इस दौर में हिंदी पत्रकारिता का काफी विकास हुआ। हिंदी पत्रकारिता का स्वातंत्र्योत्तर काल केवल निर्माण-काल ही नहीं अपितु क्रांति का युग भी रहा है। डॉ. रामचंद्र तिवारी ने स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता के आठ उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- "स्वतंत्र भारत को नया दृष्टिकोण प्रदान करना, ज्ञान विज्ञान के नए क्षितिजों का हिंदी माध्यम से उद्घाटन, नूतन निर्माण की विविध विधाओं को प्रोत्साहन देना, भारतीय संस्कृति और सभ्यता को मुक्त वातावरण में फैलाना, ...रचनाकारों की सृजनशीलता जगाना, सामाजिक स्तर पर वरेण्यता स्थापित करना आदि ही इसके प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।"[1]

साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में विभिन्न जीवन मूल्यों, विचारधाराओं एवं वादों का उदय इसी दौर में हुआ है। इसे पत्रकारिता का 'स्वर्णकाल' भी कहा जाता है। इस दौर की पत्रिकाएँ हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में स्तंभ के रूप में जानी जाती हैं, जो प्रमुख है- 'कल्पना' (1949), 'धर्मयुग' (1950), 'कादंबिनी' (1960), 'सारिका' (1960), 'दिनमान' (1965), 'सरिता' (1945), 'आलोचना', 'पूर्वाग्रह', 'नई कविता', 'निकष', 'दस्तावेज', 'आजकल', 'ज्ञानोदय', 'कहानी', 'साहित्य संदेश', 'अजंता', 'नवनीत', 'माध्यम', 'समीक्षा' आदि। इसके अतिरिक्त बच्चों एवं महिलाओं के लिए कुछ पत्रिकाएँ जैसे- 'नंदन', 'चंपक', 'पराग', 'चंदामामा', 'गृहशोभा' आदि पत्रिकाएँ इसी युग की देन हैं।

एक प्रकार से देखें तो इस दौर की पत्रिकाओं का हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में एक समृद्ध इतिहास रहा है। इन पत्रिकाओं की स्थिति, महत्ता, प्रसार, संख्या, उपयोगिता और सामग्री के अध्ययन से हिंदी पत्रकारिता के वर्तमान स्वरूप को समझा जा सकता है साथ ही भावी विकास के दिशाबोध को भी ग्रहण किया जा सकता है।

[1] हिंदी पत्रकारिता स्वरूप एवं संदर्भ विनोद गोदरे, पृ.-56

1.2 'कल्पना' का प्रारंभ और विकास

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में जब हम पत्रिकाओं की महत्ता एवं उसके योगदान की चर्चा करते है तो महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित पत्रिका 'सरस्वती' का नाम लेना समीचीन होगा। द्विवेदी जी ने पत्रकारिता के इतिहास में एक नए युग की स्थापना की। उन्होंने जिस प्रकार से हिंदी को एक नई दिशा एवं गति प्रदान की उस काम को आगे की पत्रिकाएँ उस तरह से नहीं कर सकी, जिन उद्देश्यों को लेकर 'सरस्वती' सामने आई थी। 'सरस्वती' ने न सिर्फ हिंदी पत्रकारिता को नया एक आयाम प्रदान किया बल्कि हिंदी साहित्य के विकास में भी महती भूमिका निभाई। यदि हम सीधे स्वातंत्र्योत्तर युग पर अपनी दृष्टि डालें तो इस दौर में 'धर्मयुग', 'सारिका', 'नई कहानी', 'आलोचना' जैसी तमाम पत्रिकाओं का उदय हुआ लेकिन 'सरस्वती' जैसा रूख अब तक की किसी भी पत्रिका में न था। ऐसे समय में हैदराबाद जैसे अहिंदी भाषी क्षेत्र से 'कल्पना' पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसका तेवर अब तक की अन्य पत्रिकाओं से भिन्न था। दूसरे शब्दों में हम कहें कि यह कुछ-कुछ 'सरस्वती' पत्रिका के कार्यों की तरफ अग्रसर दिखी।

इस पत्रिका का आरंभ 15 अगस्त, 1949 को हुआ, इसके प्रधान संपादक आर्येन्द्र शर्मा तथा संपादक मंडल में डा. रघुवीर सिंह, प्रो. रंजन, मधुसूदन चतुर्वेदी एवं बद्रीविशाल पित्ती थे। 'कल्पना' अपने शुरुआती दिनों में द्वैमासिक थी लेकिन आगे चलकर, तीसरे वर्ष से उसका प्रकाशन मासिक पत्रिका के रूप में होने लगा। 'कल्पना' का आरंभिक विकास साहित्य के साथ-साथ सांस्कृतिक और कलात्मक पत्रिका के रूप में हुआ है। इसके प्रवेशांक की शुरुआत हिंदी के शीर्षस्थ लेखकों से हुई, यह इसकी सकारात्मक सोच एवं उपलब्धि थी। इस पत्रिका की यह प्रमुख विशेषता रही है कि इसने आद्यांत अपने प्रत्येक अंकों में साहित्य के लगभग सभी विधाओं का समायोजन करके चलने का निर्णय लिया था। यदि हम गौर करें तो इसके प्रवेशांक को देखकर यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि इसने अपने प्रथम अंक में ही कविता, कहानी, नाटक, निबंध, गीत, पुस्तक-परिचय एवं अनुदित कृतियों आदि को प्रमुखता से स्थान दिया है। इसके प्रथम अंक में वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा 'भारतीय ललित कला की परंपराएँ एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा 'आज भी काव्य की आवश्यकता है' आदि महत्त्वपूर्ण निबंध प्रकाशित हुए जो काफी चर्चित रहे।

हिंदी निबंध विधा के बारे में जो यह आरोप लगाया जाता था कि वह हिंदीसाहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा काफी पिछड़ी हुई हैं, द्विवेदी जी एवं इस दौर के अन्य निबंधकारों ने

इस कमी को पूरा किया। इस दौर के निबंधकारों के संदर्भ में डॉ सदानंद प्रसाद गुप्तने हजारी प्रसाद द्विवेदी के उद्धरण को प्रस्तुत करते हुए लिखा है- "इन निबंधकारों ने अपने व्यापक अध्ययन की पृष्ठभूमि पर अपनी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया को अत्यंत मार्ग स्पर्शी बनाकर अभिव्यक्त किया है। इनमें कलाकारोचित तन्मयता एवं लौकिक धरातल पर पाठकों के प्रति आत्मीयता का भाव है।"[1]

अगस्त, 1949 में प्रकाशित हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'आज भी काव्य की आवश्यकता है' अपने दौर के चर्चित निबंधों में से एक था। इस निबंध में उन्होंने काव्य के संदर्भ में लिखा है कि- "काव्य ही एक मात्र ऐसी महती शक्ति है जिसके बल पर हम जगत की यावतीय सफलताओं को पा सकते हैं, ठीक नहीं है। चेतना के संपूर्ण अवयवों को उचित ढंग से विकसित करके ही मनुष्य जीवन चरित्रार्थ हो सकता है। उसे जिस प्रकार उत्तम अन्न और वस्त्र चाहिए, व्यवस्थित राजप्रणाली और सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था चाहिए, सुपारिभाषित कानून और सुपारिचालित न्याय-व्यवस्था चाहिए उसी प्रकार काव्य भी चाहिए, संगीत भी चाहिए और विज्ञान भी चाहिए।"[2]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है इस दौर के साहित्य में रचनाकारों के बहुआयामी व्यक्तित्त्व की झाँकी उनके निबंधों में मिलती है। उनके व्यक्तित्त्व की यह विराटता निबंधों को विचार एवं अनुभूति दोनों पक्षों से सशक्तबनाती है।

'कल्पना' के प्रधान संपादक आर्येन्द्र शर्मा मूलत: वैयाकरण थे। उनकी पुस्तक 'बेसिक ग्रामर ऑफ हिंदी' भारत सरकार ने प्रकाशित की जिसे आज भी हिंदी का मानक व्याकरण माना जाता है। भाषा के प्रति उनकी गंभीरता और अच्छी रचनाओं को पहचानने की विवेकी दृष्टि ने 'कल्पना' को अपनी एक अलग जगह बनाने में मदद की। उसके प्रवेशांक में अन्य रचनाओं के अतिरिक्त लगभग एक दर्जन मौलिक निबंधों की प्रक्रिया अगले अंकों में भी निरंतर जारी रही। इनमें समालोचनात्मक, सैद्धांतिक, विवेचनात्मक, यात्रा-वर्णन, समस्यात्मक, दार्शनिक और सांस्कृतिक निबंधों की प्रमुखता रही। इस दौर के लेखकों में वासुदेवशरण अग्रवाल, चंद्रबली पांडेय, राय आनंद कृष्ण, भदंत आनंद कौशल्यायन, बाबूराम सक्सेना, बलदेव उपाध्याय, शांतिप्रिय द्विवेदी, धीरेंद्र वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, अगरचंद नाहटा, हजारी प्रसाद द्विवेदी और विनय मोहन शर्मा आदि प्रमुख थे।

---

[1] हिंदी साहित्य विविध परिदृश्य: सदानंद प्रसाद गुप्त, पृ.- 56

[2] कल्पना (पत्रिका) अगस्त, 1949 पृ.-15

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो- "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही अधिक संभव होता है इसीलिए गद्य शैली के विवेचक उदाहरणों के लिए अधिकतर निबंध ही चुना करते हैं।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस दौर में निबंधों की एक प्रवाहमान धारा चली जिसे 'कल्पना' ने काफी महत्त्व दिया। इसके पश्चात् प्रत्येक अंक में लोक साहित्य, लोक-संस्कृति, लोक-गीत एवं अन्य भारतीय ललित कलाओं पर भी निबंध लिखे गए। जिनमें प्रमुख हैं- 'हमारा लोक-साहित्य-लोक विश्वास':श्यामचरण दूबे (जून-1950), 'भारतीय ललित कला की परंपराएँ':वासुदेवशरण अग्रवाल (अगस्त-1949), 'प्रगति संस्कृति और लोक-कला'-शांतिप्रिय द्विवेदी (अप्रैल, 1950), 'हमारा लोक-साहित्य-लोक कथा': श्यामचरण दूबे (अप्रैल-1950), आदि।

इस दौर में 'कल्पना' ने लोक संस्कृति से जुड़े आलेखों को प्रमुखता दी जिनसे अन्य पत्र-पत्रिकाएँ बिल्कुल अछूती दिख रही थी इसलिए 'कल्पना' अन्य पत्र-पत्रिकाओं से विशिष्ट थी एवं उसका अलग ही महत्त्व था, जो आज भी है।

हिंदी भाषा के विकास में भी 'कल्पना' की महती भूमिका रही है। वैसे इसके प्रवेशांक की संपादकीय को देखा जाय तो यह चीजें पूर्णत: स्पष्ट है। इसके उद्देश्यों की चर्चा करते हुए संपादक ने यह स्पष्ट जाहिर किया है कि " 'कल्पना' का एक मात्र ध्येय हिंदी के स्तर को ऊँचा करना ही रहेगा।"[2] एक प्रकार से देखें तो 'कल्पना' ने न सिर्फ साहित्य के विकास में अपनी भूमिका निभाई बल्कि भाषा के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

'कल्पना' के दूसरे वर्ष (फरवरी 1950) का अंक भी काफी महत्त्वपूर्ण रहा। इस अंक में निबंध विधा को छोड़कर अन्य विधाओं (जैसे-कविता, कहानी, गीत, एकांकी आदि) की प्रमुखता रही। इस पत्रिका ने इस अंक में निराला के 'गीत' को महत्त्व दिया। इसके अतिरिक्त अन्य कई चर्चित कविताओं का प्रकाशन भी इसी अंक में हुआ जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'निष्ठाओं के छोर न छोड़ो', 'विराट संगीत'-जानकी वल्लभ शास्त्री, 'स्वप्न-भय'- लक्ष्मी नारायण मिश्र, 'वन में'-सरोजिनी नायडू आदि प्रमुख थी। मौरिस बेरिंग की एकांकी 'घोड़ा काला था' एवं अलेग्जेंडर पुश्किन की कहानी 'पोस्टमास्टर' को भी 'कल्पना' ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है ।

---

[1] हिंदी साहित्य का इतिहास: आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.- 346

[2] कल्पना (पत्रिका) अगस्त, 1949, संपादकीय से

शांतिप्रिय द्विवेदी का 'हिंदी कविता का विकास क्रम' काफी चर्चित लेख रहा। इसमें उन्होंने द्विवेदी युगीन प्रतिनिधि कवियों एवं कविताओं की बड़े विस्तार से चर्चा की है। इस पत्रिका का दिसंबर 1950 का अंक भी काफी प्रतिष्ठित हुआ। इस अंक में 'शुभ-पुरुष' (कविता)- सुमित्रानंदन पंत, संस्कृति का अर्थ- श्यामचरण दूबे, 'कहाँ के रुपए कैसे रुपए (कहानी)-वृंदावनलाल वर्मा, 'कविता और रहस्यवाद'- प्रभाकर माचवे, 'बच्चन की कविता'- नगेंद्र, 'अभिसार' (कविता)-टैगोर, 'नवागात' (कहानी)-मैक्सिम गोर्की आदि रचनाएँ प्रमुख थी।

'कल्पना' की यह प्रमुख विशेषता रही है कि इसने अपने प्रत्येक अंक में न सिर्फ हिंदी साहित्य बल्कि अन्य भाषाओं की रचनाओं को हिंदी अनुवाद के रूप में सामने लाने का पूर्ण प्रयास किया है। जैसे-रिचार्ड लैकरिज की कहानी 'अच्छा आदमी' (अप्रैल, 1950), 'दो जर्मन लोकगीत' आर्येन्द्र शर्मा (अगस्त, 1949), 'अनजन में शिशु की प्रार्थना' (कविता)-लुई मैकनीस (नवंबर, 1952) आदि।

सन् 1952 से 'कल्पना' मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होने लगी परंतु इसके नीति एवं उद्देश्यों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संपादकीय की स्थितियों में कुछ बदलाव जरूर आए, उसमें गंभीरता तथा रचनात्मकता आई। नई कविता एवं ललित निबंधों की प्रतिष्ठा हुई। पूरे वर्ष प्रत्येक अंक में 5 स्तंभ, 6 निबंध, 4 कहानी, 1 एकांकी, 4 कविताओं एवं 2 समालोचनाओं का औसत निरंतर बना रहा। जनवरी, 1952 में 'कल्पना' ने प्रमुख रचनाकारों एवं उनकी रचनाओं को प्रमुखता दी जिसमें 'रजत-शिखर' (कविता)-पंत, 'कोष-निर्माण'-नंददुलारे वाजपेयी, प्रयोगवादी कविता'- विनयमोहन शर्मा, 'नम्रती' (दखिनी कवि)-राहुल सांस्कृत्यायन, 'संबल' (कहानी)-विष्णु प्रभाकर आदि महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रमुख थी। कलात्मक अभिव्यक्तियों को भी 'कल्पना' ने प्रारंभ से ही काफी महत्त्व दिया है तथा उसका रूप साहित्य के साथ-साथ कला-पत्रिका के रूप में भी सामने आया। इसमें प्रारंभ के दो वर्षों में सारदा उकील, आसितकुमार हालदार, सुधीर खास्तगीर, अमृता शेरगिल, नंदलाल वसु, फिदा हुसैन जैसे शीर्षस्थ कलाकारों के बहुतायत चित्र प्रकाश में आए। बाद के वर्षों में विजयवर्गीय, विनोद बिहारी मुखर्जी और दिनकर कौशिक जैसे उत्कृष्ट चित्रकारों के भी चित्र प्रकाशित हुए। 'कल्पना' की यह प्रमुख विशेषता रही है कि इसने कई दुर्लभ चित्रों को भी सामने लोने का प्रयास किया। इसी दौरान इसमें 'कला-स्तंभ' नाम से एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ को काफी प्रतिष्ठा मिली। सितंबर, 1959 में 'कल्पना' में कई प्राचीन चित्र जैसे-मूर्तिकला, शुंग गुप्तकाल के चित्र, मौर्य कुषाण कालीन चित्र, राजधानी शैलियों के चित्रों की भरमार रही।

विवेकी राय के शब्दों में कहें तो- "निस्संदेह मकबूल फिदा हुसैन, जगदीश गुप्त, कृष्णप्रिया, शमशाद हुसैन और लक्ष्मण गौड़ के आधुनिक संवेदनाओं से वेष्ठित सजीव रेखांकन जो 'कल्पना' की शोभा बढ़ाते हैं और इस पत्रिका के पुराने अंकों की सज्जा कला के नए एवं सूक्ष्म उत्कर्ष के विकासात्मक इतिहास की ओर इंगित करते हैं, वह अभूतपूर्व है।"[1]

'कल्पना' में 'पुस्तक-परिचय' नामक स्तंभ को भी काफी प्रतिष्ठा मिली है। इस कॉलम की यह विशेषता रही है कि इसमें भिन्न-भिन्न रचनाकारों की नई पुस्तकें भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा प्रकाश में आती रही। यह स्तंभ इस पत्रिका में आद्यांत किसी न किसी रूप में बना रहा, यही इसकी सफलता रही। 'कल्पना' में तीसरे वर्ष फरवरी, 1952 में भगवतशरण उपाध्याय का लेख प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था- 'नाटककार क्या लिखे?'। इसमें उन्होंने नाटक के विविध सोपानों जैसे-अब तक किस तरह के नाटक लिखे गए या लिखे जा रहे हैं? वे कितने प्रासंगिक हैं? आदि पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने अपने लेख में एक जगह लिखा है- "समाज की स्थिति का निरूपण करने में जितना समर्थ नाटक हो सकता है, उतना अन्य कोई साहित्य नहीं। इसलिए नाटककार को चहिए कि वह सचेत होकर जन-जन की कल्याणकर प्रवृत्तियों का चरित रंगमंच पर प्रकाशित करे और मनोरंजन के साथ ही प्रगति की मंजिलें तय करने में सहायक हो।"[2]

हिंदी एकांकी-नाटक के विकास के इतिहास का अध्ययन करने के लिए 'कल्पना एक उपयुक्त माध्यम है। सन् 1950 के लगभग हिंदी एकांकियों को पूर्ण विकसित कर विदेशी एकांकियों के समकक्ष खड़ा करने का 'कल्पना' का ठोस कदम रहा है। विवेकी राय का फरवरी, 1977 में 'कल्पना: एक सर्वेक्षण' शीर्षक से एक आलेख सामने आया जिसमें उन्होंने इसका जिक्र करते हुए लिखा है- "सन् 1950 के लगभग हिंदी एकांकी को पूर्ण विकसित विदेशी भाषा के एकांकियों के समकक्ष लाने की कोई ठोस 'कल्पना' संपादक मंडल के सामने थी और शायद इसी के आग्रह पर प्रवेशांक में ले.पी. याल्तेसेफ का एक श्रेष्ठ रूसी एकांकी और दूसरे अंक में मौरिस बैरिंग का अंग्रेजी एकांकी प्रस्तुत किया गया। पत्रिका के तीसरे अंक (अप्रैल, 1950) में वृंदावनलाल वर्मा की एकांकी 'कनेर' और फिर 5वें अंक में विष्णु प्रभाकर का रेडियो एकांकी 'नारी' प्रकाशित हुआ। ये दोनों एकांकी नि:संदेह बहुत श्रेष्ठ और कलात्मक निखार युक्त हैं।"[3]

---

[1] कल्पना और हिंदी साहित्य: विवेक राय, पृ.- 27

[2] कल्पना (पत्रिका), फरवरी 1952, पृ.-110

[3] कल्पना (पत्रिका),फरवरी, 1977, पृ.-197

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निस्संदेह 'कल्पना' ने एकांकी नाटक विधा को मुक्त मंच दिया है। मार्च, 1952 में भी कविता, कहानी एवं कुछ अन्य विधाओं के साथ यह श्रृंखला आगे बढ़ती गई। अप्रैल, 1952 में प्रभाकर माचवे की एकांकी 'रामभरोसे' और महादेवी वर्मा एवं शिवमंल सिंह 'सुमन' के गीत प्रकाश में आए। लक्ष्मीनारायण मिश्र, अश्क और विष्णु प्रभाकर इस वर्ष के प्रमुख एकांकीकार रहे। इसके साथ ही रंगमंच संबंधी समसामायिक दृष्टि और अपेक्षाओं को स्पष्ट करने के लिए निबंध भी प्रकाशित हुए, 'हिंदी नाट्यसाहित्य में प्रहसन' (रामचरण सिंह), 'वर्तमान रंगमंच प्रवृत्तियाँ और संगठन' (जगदीशचंद्र माथुर) इस वर्ष के इस विषय से संबंधित श्रेष्ठ निबंध हैं। दिसंबर, 1952 में मार्कण्डेय की कहानी 'गुलरा के बाबा' सर्वप्रथम 'कल्पना' में प्रकाशित हुई। इस दौर में कहानी के क्षेत्र में काफी बदलाव आया जिसे 'कल्पना' ने प्रमुखता दी है। 'कल्पना' का नवंबर, 1952 का अंक भी काफी महत्त्वपूर्ण रहा। इस अंक की प्रमुख रचनाओं में विष्णु प्रभाकर की एकांकी 'अर्द्धनारीश्वर' नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता 'सिंदूर तिलकित भाल', 'बच्चन के गीत' एवं कुछ आलेख जिसमें विनयमोहन शर्मा का 'हिंदी समालोचना का विकास', शिवप्रसाद सिंह का 'पिछले दशक की हिंदी कविता', प्रमुख थे।

मई, 1953 तक आते-आते 'कल्पना' के स्ट्रक्चर में कुछ बदलाव जरूर आए। इस वर्ष संपादक मंडल में दो नए नाम शामिल हुए जिसमें भवानी प्रसाद मिश्र, मुनींद्र एवं कला-संपादक के रूप में जगदीश मित्तल प्रमुख थे। इस अंक से 'कल्पना' को निबंध, कहानी, कविता एवं स्तंभ चार भागों में बाँट दिया गया। इस दौर के कहानीकारों में रामकुमार वर्मा, गुरुवचन सिंह, श्रीकृष्ण विलियम फाकनर, कुमारी कल्पना, मनोहर श्याम जोशी, भीष्म साहनी आदि प्रमुख लेखकों की कहानियों को 'कल्पना' ने प्रकाशित किया साथ ही रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह , निराला, विजयदेव नारायण साही, प्रभाकर माचवे, भवानी प्रसाद मिश्र, वीरेंद्र मिश्र, कीर्ति चौधरी, दुष्यंत कुमार, नरेश मेहता आदि कवियों की कविताओं को भी 'कल्पना' ने इस दौर में प्रमुखता दी। इसके अतिरिक्त इस दौर के निबंधकारों में मुख्य रूप से डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, भगीरथ मिश्र, चन्द्रबली, कन्हैयालाल सहल, गिरिजादत्त शुक्ल, रामशंकर भट्टाचार्य, अज्ञेय, शिवदान सिंह चौहान, डॉ. मंगलदेव शास्त्री आदि प्रमुख रहे। इस दौर में स्तंभों को भी काफी प्रतिष्ठा मिली जिसमें प्रमुख है-'साहित्यधारा', 'कला-प्रसंग', 'सांस्कृतिक टिप्पणियाँ', 'समालोचना' आदि। पाँचवें वर्ष में (1954) 'कल्पना' का रूप-रंग एक बार फिर बदला। निबंधों की केंद्रीय साहित्येत्तर गंभीरता कम हुई साथ ही कहानियों की संख्यामें भी काफी बढ़ोत्तरी हुई। पाँचवें वर्ष में

मंगलदेव शास्त्री के भारतीय संस्कृति पर 5 निबंध और रमाशंकर भट्टाचार्य के चार निबंध संस्कृत भाषा और व्याकरण से संबंधित प्रमुखता से आए। जनवरी, 1955 में दुष्यंत कुमार का निबंध 'नई कविता परंपरा और प्रयोग' काफी चर्चित रहा। इसमें उन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' एवं रानी केतकी की कहानी' से होते हुए प्रेमचंद एवं प्रसाद के बाद की पीढ़ियोंपर बड़े विस्तार से चर्चा की है। यदि हम गौर करें तो कुमार कृष्ण ने अपनी पुस्तक 'कहानी के नए प्रतिमान' में इसी संदर्भ को लेते हुए लिखा है- 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में 'नई कविता' के बाद कहानी ही ऐसी विधा है जिसने युगीन चेतना को उसकी समग्र जटिलताओं के साथ चित्रित करने की चेष्टा की है।... नए संदर्भों की खोज ने ही पचास के आस-पास सामने आने वाली कहानी को 'नई कहानी' की संज्ञा देने पर विवश किया है। 'नई कहानी ' से संबद्ध वाद-विवाद सबसे पहले पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही सामने आया, जिनमें 'कहानी', 'लहर', 'विनोद', 'कल्पना' के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं।"[1]

सन् 1955-56 में 'कल्पना' में कुछ स्थिरता दिखाई दी। इस दौरान 'कल्पना' का ध्यान नए रचनात्मक मौलिक साहित्य पर केंद्रित रहा। पूरे वर्ष में लगभग 100 लेखकों की 125 रचनाएँ प्रकाशित हुई। वास्तव में इस समय लंबी रचनाओं की एक श्रृंखला ही चली। कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, रमेश वक्षी, राजेन्द्र यादव, रामदरश मिश्र, हृदयेश जैसे कथाकारों की एक-एक कहानियाँ प्रकाशित हुई। इस वर्ष से 'कल्पना' में नए कवियों के रूप में मधुकर गंगाधर, मलयज, श्रीकांत वर्मा, भारतभूषण अग्रवाल, कुँवर नारायण, दुष्यंत कुमार, अज्ञेय, रघुवीर सहाय एवं कीर्ति चौधरी आदि प्रमुखता से आए। अप्रैल, 1955 में अज्ञेय की कविता 'टेसू' एवं दिनकर की 'समर शेष है' काफी चर्चित रही। जुलाई,1955 में हंसराज रहवर द्वारा रचित 'प्रगतिवाद बनाम यथार्थवाद' निबंध काफी महत्त्वपूर्ण रहा। 'अंधा युग' धर्मवीर भारती द्वारा रचित गीति-नाट्य को भी 'कल्पना' ने इसी वर्ष प्रकाश में लाया।

'कल्पना' के 56 वें अंक में बालकृष्ण राव द्वारा रचित निबंध 'नई कविता' का प्रकाशन कई किस्तों में होता रहा। इस वर्ष संपादक मंडल में रघुवीर सहाय भी शामिल हुए जिन्होंने कविता विधा के उत्तरोत्तर विकास में काफी योगदान दिया।

सन् 1957 में 'यह बेचारी नाम' से एक स्तंभ शुरू हुआ जिसकी उस समय जरूरत भी थी। नामवर सिंह ने अपने साक्षात्कार में ''कल्पना' पत्रिका के संबंध में कहा है कि -"भाषा के

[1] कहानी के नए प्रतिमान: कृष्ण कुमार, पृ.-24

विकास में 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जो भूमिका निभाई उसे आर्येन्द्र शर्मा ने पूरा किया जिसकी तरफ अन्य पत्रिकाओं का ध्यान नहीं जा रहा था। साहित्यिकता के स्तर पर यदि देखा जाय तो उस दौर में 'कल्पना' से बेहतर अन्य कोई पत्रिका नहीं थी।"[1]

मार्च, 1959 में शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'नन्हों' काफी चर्चित रही तथा इसी अंक में राजेन्द्र यादव ने रेणु के उपन्यास परती-परिकथा पर 'परती-परिकथा की ताजमनी' शीर्षक से उसके महत्त्व को प्रतिस्थापित करने का पूरा प्रयास किया जिसे 'कल्पना' ने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। जून, 1959 में हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित उपन्यास 'चारु चंद्रलेख' का (क्रमश: अंशत:) प्रकाशन सर्वप्रथम 'कल्पना' में ही हुआ। इस उपन्यास के संदर्भ में विवेकी राय ने लिखा है- "चारु चंद्रलेख मध्यकालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और धर्म साधना की पृष्ठभूमि पर सृष्ट एक अत्यंत ही गंभीर किंतु मनोरंजक और गत्यात्मक उपन्यास है। कुल मिलाकर इसे सांस्कृतिक उपन्यास की कोटि में उच्च स्थान पर रखा जा सकता है।"[2]

'कल्पना' के मई, 1959 के अंक को देखें तो यह भी कई स्तरों से काफी प्रतिष्ठित हुआ। इसमें मुख्य रूप से भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'तुम और मैं' बच्चन की कविता 'मिट्टी से हाथ लगाए रह' एवं भागीरथ मिश्र का एक आलेख 'कामायनी की प्रतीकात्मकता' काफी महत्त्वपूर्ण रहे। इस दौर के प्रमुख रचनाकारों में श्रीकांत वर्मा, मंगलदेव शास्त्री, विद्यासागर नौटियाल, मोहन राकेश (यात्रा-रोमांस, फरवरी1957), बच्चन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, देवीशंकर अवस्थी, नेमिचंद्र जैन, निर्मल वर्मा, पुरुषोत्तम खरे, दुष्यंत कुमार, शिवप्रसाद सिंह, रघुवीर सहाय, बालस्वरूप राही, अशोक वाजपेयी, प्रभाकर माचवे, मन्नू भंडारी, भारत भूषण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, धर्मवीर भारती, रमेश कुंतल मेघ, शिवदान सिंह चौहान आदि प्रमुख थे।

सन् 1958 में 'कल्पना' ने जब विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका का रूप धारण कर लिया तो उसके निबंधों की चयन प्रक्रिया में भी काफी बदलाव आया। 'कल्पना' ने जितनी भी विधाओं को महत्त्व दिया है वह अपने समय की गंभीर एवं चर्चित रही हैं। उसमें समालोचना का भी प्रमुख स्थान है। साहित्य समीक्षा से जुड़े गंभीर, स्थाई एवं मौलिक समालोचना को 'कल्पना' ने प्रमुख स्थान दिया है। नवंबर, 1952 में विनय मोहन शर्मा द्वारा लिखित 'हिंदी में समालोचना का विकास' आलेख इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है।

---

[1] साक्षात्कार: नामवर सिंह, परिशिष्ट से उद्धृत

[2] कल्पना (पत्रिका), फरवरी,1977, पृ. 37

अगस्त, 1959 में पत्रिका का 100 वाँ अंक पूरा हुआ तो इस अंक को एक विशेषांक के रूप में 'कल्पना के 100 अंक' शीर्षक से प्रकाशित किया गया। इस विशेषांक में दसवें वर्ष तक अर्थात् 1 से 100 अंक तक में छपने वाली सामग्री की एक विशाल सूची प्रकाशित हुई। 'कल्पना' के सौ अंक' विशेषांक का ब्यौरा देते हुए विवेकी राय ने लिखा है- "कल्पना के सौ अंक' विशेषांक में प्रकाशित सूची के अनुसार इस अवधि में 'आकाशवाणी' स्तंभ में 12 रचनाएँ, 'कमलाकांत जी ने कहा' स्तंभ में16, 'कलाप्रसंग' में 12, मूर्तिकला के अंतर्गत 41 चित्र, प्राचीन कला के 12, राजस्थानी कला के 19, मुगल कला के 7, पहाड़ी कला के 6, समसामयिक 61 चित्रकारों के 158 चित्र, 76 विषयों पर टिप्पणियाँ, 'निबंध चिंतन' स्तंभ में चार रचनाएँ, 956 पुस्तकों की समीक्षा, विदेशी साहित्य का सर्वेक्षण 17 संपादकीय, 59 विषयों पर पाठकीय पत्र और 'साहित्यधारा' में सैकड़ों-सैकड़ों संज्ञाएँ जुड़ी, कुल 531 लेखकों की 1525 रचनाएँ 'कल्पना' में प्रकाशित हुई।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं अब तक के 'कल्पना' के 100 अंकीय यात्रा को रेखांकित करने में यह विशेषांक काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। 1960 में 'कल्पना' पत्रिका में कुछ नए रचनाकार भी सामने आए जिनमें प्रमुख हैं-राजकमल चौधरी, दूधनाथ सिंह, मुक्तिबोध, मुद्राराक्षस आदि। नवंबर सन् 1963 में पहली बार नेमिचंद्र जैन ने 'कल्पना' में नवलेखन की विस्तृत व्याख्या एक निबंध के रूप में की। इसी वर्ष 'उर्वशी' की समीक्षा पर लगातार कई अंकों में एक लंबी बहस चली। इनमें प्रमुख रूप से रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकांत वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, सुमित्रानंदन पंत, ओमप्रकाश, दीपक, मैथिलीशरण गुप्त, रामविलास शर्मा, विद्यानिवास मिश्र, जैसे प्रतिष्ठित रचनाकारों ने 'उर्वशी' के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कल्पना' ने समीक्षा के क्षेत्र में हमेशा संवादों एवं बहसों के न्यायिक परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करने में अहम भूमिका अदा की है।

मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'आशंका के द्वीप अंधेर में' सर्वप्रथम 'कल्पना' (नवंबर, 1964) में ही प्रकाशित हुई। यह अंक अन्यकई दृष्टियों से भी महत्त्वपूर्ण रहा। केदारनाथ अग्रवाल का एक आलेख 'आधुनिकता, नई कविता: समस्या और समाधान' इसी अंक में प्रकाशित हुआ। उन्होंने इस आलेख में नई कविता के संदर्भ में लिखा है- "आज कोई भले ही कह ले 'नई कविता' एक उपलब्धि है, एक सिद्धि है, एक ईकाई है किंतु वस्तु-स्थिति इसके विपरीत है। वह न

[1] कल्पना और हिंदी साहित्य: विवेकी राय, पृ.13

उपलब्धि है, न सिद्धि है और न जीवंत ईकाई। वह खंडित मानव मन की मनोदशा की खंडित अभिव्यक्ति मात्र है।"[1]

दिसंबर,1964 में कीर्ति चौधरी की कविता 'वे कैसे दिन थे, विनोद कुमार शुक्ल (टुकड़ा आदमी) आदि की रचनाएँ प्रमुख रूप से प्रकाशित हुई। 15 वें वर्ष में (1964) औसतन 10 स्तंभ, 10-12 रचनाएँ जिसमें मुख्य रूप से 4 कहानियाँ, 4 कविता एक निबंध और एक समीक्षा का प्रकाशन होता रहा। यदि गौर करें तो 10 वर्ष पहले 'कल्पना' का जो रूप था, यहाँ तक आते-आते उसमें काफी हल्कापन दिखने लगा। निबंधों का ह्रास और कविता-कहानी का नवोन्मेष होने लगा। यहाँ तक कि इसके स्तंभों में भी पहले के अपेक्षाकृत काफी गिरावट आई। इस दौर के संपादक मंडल में एक-दो और नए नाम जुड़े। इस समय कुल मिलाकर 'कल्पना' के संपादक मंडल में छ: सदस्य थे जिनमें मधुसूदन चतुर्वेदी, बद्रीविशाल पित्ती, मुनींद्र, जगदीश मित्तल, गौतम राव, ओमप्रकाश निर्मल प्रमुख थे। चौदहवें वर्ष के अंत में प्रधान संपादक डॉ. आर्येन्द्र शर्मा के पदत्याग के बाद नया नाम प्रयाग शुक्ल का जुड़ा। कुछ दिनों तक भवानी प्रसाद मिश्र एवं वृंदावन बिहारी मिश्र ने भी इस पत्रिका के संपादन में अपनी महती भूमिका निभाई।

1968 तक आते-आते पाठकों की 'कल्पना' के गिरते स्तर संबंधी क्ई प्रतिक्रियाएँ आई। जुलाई,1967 में 'निराला का आधुनिक बोध' शीर्षक से बच्चन सिंह का लेख काफी महत्त्वपूर्ण रहा। इस अंक के संपादक मंडल में एक नया नाम मणि मधुकर का भी जुड़ा। 'कथा-साहित्य की भाषा' शीर्षक से सितंबर,1967 राजेंद्र यादव का लेख चर्चा में रहा। उन्होंने कथा साहित्य की भाषा के संदर्भ में लिखा है - "अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच भाषा निश्चय ही एक तीसरी जीवित और स्वतंत्र सत्ता है। वह हमें औरों से मिली है और हमें औरों से जोड़ती है।"[2]

नवंबर,1967 के अंक को अगर देखें तो 'कल्पना' यहाँ तक आते-आते बिल्कुल सिकुड़ने लगी थी। कुल मिलाकर इस अंक में 2-3 कविताएँ और 2 से 3 आलेख प्रकाशित हुए। जनवरी-फरवरी, 1967 में लक्ष्मीकांत वर्मा के लेख 'हिंदी साहित्य के पिछले बीस वर्ष' का प्रकाशन क्रमश: कई अंकों में हुआ। उन्होंने अपने इस सर्वेक्षण में यह बताने की पूरी कोशिश की है कि

---

[1] कल्पना (पत्रिका),नवंबर,1964, पृ.-43

[2] कल्पना (पत्रिका) सितंबर,1967, पृ.-67

हिंदी साहित्य ने अपने पिछले 20 वर्षों में कितना प्रगति की है । रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या के विरूद्ध' सबसे पहले 'कल्पना' (मई, 1967) में ही प्रकाशित हुई। इस दृष्टि से यह अंक काफी चर्चित और महत्त्वपूर्ण रहा। जनवरी, 1968 में लक्ष्मीकांत वर्मा ने साठोत्तरी पीढ़ी और विसंगतियों के संदर्भ में काफी विस्तार से चर्चा की है । फरवरी, 1968 में एक साथ कई रचनाकारों द्वारा 'समकालीन कविता: एक परिचर्चा' शीर्षक से एक सार्थक बहस सामने आई। इसमें मुख्य रूप से इंद्रनाथ मदान, गंगा प्रसाद विमल, गजेंद्र तिवारी, परमानंद श्रीवास्तव, श्रीराम वर्मा, राजीव सक्सेना आदि रचनाकार सामिल हुए । जून, 1968 में विपिन कुमार अग्रवाल ने 'युवा लेखन को समझने की एक दकियानूसी कोशिश' शीर्षक से आलेख लिखा जिसको 'कल्पना' ने प्रमुख स्थान दिया है। हम देखते हैं कि 'कल्पना' ने अपने प्रवेशांक में ही इस तरफ संकेत किया है कि वह रचना को रचनाकार के प्रसिद्धि के आधार पर महत्त्व न देकर सिर्फ रचना को महत्त्व देगी, इसका 'कल्पना' ने आद्यांत निर्वहन किया है। अगस्त,1968 में भी 'कल्पना' में कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुई जिनमें प्रमुख हैं- मुक्तिबोध की कविता 'भूत का उपचार', शमशेर बहादुर सिंह की चार कविताएँ, विद्यानिवास मिश्र की 'परंपरा: आधुनिक भारतीय संदर्भ' आदि। इसी क्रम में सितंबर 1968 में रामस्वरूप चतुर्वेदी का लेख 'समकालीन उपन्यास: भाषिक प्रयोग के नए स्तर', काफी चर्चित रहा। अक्टूबर,1968 में कुछ महत्त्वपूर्ण कवियों की रचनाएँ प्रकाश में आई जिनमें प्रमुख हैं- लक्ष्मीकांत वर्मा, नागार्जुन, अशोक वाजपेयी, परमानंद श्रीवास्तव आदि। 'रचना और आलोचना का समकालीन संदर्भ' जगदीश नारायण श्रीवास्तव का यह लेख अक्टूबर-दिसंबर, 1969 में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने रचना और आलोचना के बीच अंतर्संबंधों पर बड़े विस्तार से चर्चा की है। अगस्त-सितंबर, 1969 में शिवकुमार मिश्र का लेख 'नवलेखन के सामाजिक यथार्थ: संदर्भ कविता का...संदर्भ कथा साहित्य का', प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने नवलेखन और सामाजिक संदर्भों की बड़े विस्तार से व्याख्या की है। अगस्त-सितंबर, 1969 में लगभग 200 पृष्ठों में यह नवलेखन विशेषांक के रूप में भी सामने आया। इस अंक के अतिथि संपादक शिवप्रसाद सिंह ने नवलेखन की स्थितियों समस्याओं एवं उसके स्वरूप का विश्लेषण संपादकीय में किया है। इस वर्ष संपादक मंडल में दो-तीन नए नाम सामने आए जिनमें प्रमुख हैं- कांता, आलम खुंदमीरी एवं सईद मोहम्मद।

अक्टूबर, 1970 में 'अलग-अलग वैतरिणी-कितना माटी कितना पानी' (शशि भूषण शीतांशु) एवं जुलाई, 1972 में 'प्रसाद की कविता: जागरण के संदर्भ में' (युगेश्वर) महत्त्वपूर्ण

लेख प्रकाश में आए। कुल मिलाकर देखें तो 1970 के बाद से 'कल्पना' का स्वरूप पहले की अपेक्षाकृत क्षीण होने लगा एवं 1975 तक आते-आते वह पूरी तरह निष्क्रिय हो गई। हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में 'कल्पना' एक ऐसी ऐतिहासिक पत्रिका है जिसने साहित्य के लगभग सभी विधाओं (कविता, निबंध, आलोचना, कहानी आदि) के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इतना ही नहीं बल्कि इसने समय-समय पर कई साहित्यिक हस्तक्षेप भी किए।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर युगीन पत्रिकाओं में 'कल्पना' अन्य पत्रिकाओं से कई मायने में भिन्न है या हम यह कहें कि जिस तरह की साहित्यिकता 'कल्पना' में आद्यांत बनी रही वह हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में अविस्मरणीय है।

1.3 पत्रिका का उद्देश्य संपादक की नजर से

हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में 'कल्पना' पत्रिका का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पत्रिका अपने शुरुआती दिनों में जिन उद्देश्यों को लेकर सामने आई यह निश्चित रूप से हिंदी पत्रकारिता में एक नई पहल थी। अहिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र से निकलने वाली इस पत्रिका ने बहुत ही कम समय में पूरे साहित्यिक जगत में न सिर्फ हलचल मचाया बल्कि साहित्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संपादक के नजरिए से जब हम इस पत्रिका के उद्देश्यों की चर्चा करते हैं तो हम पाते हैं कि इस पत्रिका के पीछे प्रकाशक एवं संपादकों का एकमात्र ध्येय हिंदी भाषा के स्तर को ऊँचा रखना ही रहा है। 'कल्पना' पत्रिका के प्रथम अंक के संपादकीय में इस पत्रिका के उद्देश्य एवं महत्ता के संबंध मेंसंपादक ने लिखा है- "कल्पना में केवल उत्कृष्ट कोटि की रचनाओं को ही महत्त्व दिया जाएगा और उनकी उत्कृष्टता का निर्णय लेखकों की प्रसिद्धि के आधार पर नहीं अपितु उन रचनाकारों की अपनी विशेषताओं के आधार पर किया जाएगा।"[1]

पत्रिका के इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यदि इसके शुरुआती अंकों को देखा जाय तो इसने अपने उद्देश्यों के प्रति हमेशा सजगता बरती ही साथ ही उसका सफल निर्वहन भी किया है। कोई भी पत्रिका अपने आरंभ में उतनी सफलता नहीं पाती जितना कि संपादक चाहता है, ऐसी दिक्कतें 'कल्पना' के साथ भी रही हैं। इतना जरूर कि 'कल्पना' ने जितने कम समय में अपने को

[1] कल्पना (पत्रिका) अगस्त, 1949, संपादकीय से

स्तरीय बनाया उतना अन्य पत्रिकाओं ने नहीं। 'कल्पना' के उद्देश्य को इसके संपादकीय के इन शब्दों द्वारा भी समझा जा सकता है-"राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार और उत्थान के लिए भारत में जो प्रशंसनीय प्रयत्न हो रहा है उन्हीं प्रयासों को पूरा करने के लिए 'कल्पना' पत्रिका समर्पित है और यह पूरा प्रयत्न करेगी कि समस्त भारत-वर्ष में हिंदी का प्रचार प्रसार होवे और उसका अभाव,भाव में परिणति होकर गौरवयुक्त स्थान प्राप्त करे।"[1]

इस पत्रिका के प्रवेशांक में संपादक ने इस ओर भी इशारा किया है कि- "सामाजिक रचनाएँ अथवा लेख 'कल्पना' में नहीं छपेंगे और न वह देश अथवा विदेश की राजनीति से किसी भी प्रकार का संबंध रखेगी। संपादकों का आदर्श यह रहेगा कि- "'कल्पना' का कोई अंक, उसका कोई अंश कभी पुराना न हो। आज से पचास वर्ष बाद भी उसकी उपयोगिता और आकर्षकता वही रहे, जो आज है। हाँ, एक अंश अवश्य ऐसा रहेगा, जिसे एक दृष्टि से 'सामयिक' भी कहा जा सकता है और वह है, समय-समय पर प्रकाशित विभिन्न विषयों की हिंदी-पुस्तकों की आलोचना। आलोचना सर्वथा तटस्थ भाव से, गंभीरता से और संयम से, किंतु नि:संकोच रूप से की जाएगी और उसका लक्ष्य न किसी की प्रशंसा करना होगा न छिद्रान्वेषण करना, अपितु गुण, दोष विवेचन के द्वारा हिंदी भाषा का विकास करना होगा।"[2]

'कल्पना' के इन उद्देश्यों को यदि ध्यान में रखकर इसके शुरुआती अंकों को देखा जाय तो प्रारंभ में यह अपने उद्देश्यों के प्रति सजग जरूर रही है लेकिन जैसे-जैसे इसका विकास हुआ इसमें परिवर्तन भी हुए। यदि देखा जाय तो साहित्य का निर्माण समय, समाज, देशकाल और वातावरण से ही होता है। राजनीति जैसा विषय कहीं इससे बाहर की चीज नहीं है इसलिए हम यह पूरी तरह दावा नहीं कर सकते हैं कि 'कल्पना' में जो साहित्यिक लेख प्रकाशित हुए है वह इससे पूरी तरह से अलग है।

'कल्पना' जैसी पत्रिका के प्रकाशन के लिए दक्षिण भारत के समस्त महानगरों में हैदराबाद ही सबसे उपयुक्त स्थान इसलिए रहा है कि भारत की अनेक भाषाओं और भारतीय संस्कृति के अनेक रूपों जैसा सुंदर और अकृत्रिम समन्वय इस नगर में कई सदियों से विद्यमान है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कल्पना' एक ऐसी साहित्यिक-

---

[1] कल्पना (पत्रिका),अगस्त, 1949, संपादकीय से

[2] पत्रकारिता इतिहास और प्रश्न: कृष्ण बिहारी मिश्र- पृ.-188-189

सांस्कृतिक पत्रिका है जिसने उत्तर और दक्षिण की भाषाओं, साहित्य और सांस्कृतियों को अधिक से अधिक निकट लाने का प्रयास किया। यही कारण है कि इसने गैर हिंदी भाषी रचनाकारों को भी उतना ही महत्त्व दिया जितना कि हिंदी भाषा-भाषी रचनाकारों को।

इस पत्रिका की मुख्य विशेषता यह भी रही है कि इसमें यथासंभव लगभग सभी विधाओं जैसे-कविता, कहानी, एकांकी, समालोचना और पुस्तक परिचय, कला-सभ्यता, इतिहास, लोकगीत आदि सांस्कृतिक विषयों पर लेख तथा अन्य भाषाओं के साहित्य के अनुवाद को प्रत्येक अंक में लाने का भरसक प्रयास किया है। उदाहरण स्वरूप हम देख सकते हैं कि 'कल्पना' का आरंभिक विकास साहित्य के साथ-साथ सांस्कृतिक और कलात्मक पत्रिका के रूप में हुआ है। 'कल्पना' के आरंभिक अंक की संपादकीय में यह पूर्णत: स्पष्ट है कि इसने अपने शुरुआती दौर में ही साहित्येत्तर विषयों, जैसे-कला, सभ्यता, इतिहास और लोक-गीत आदि सांस्कृतिक विषयों को भी उतना ही महत्त्व दिया जितना कि साहित्यिक विषयों को। यह पत्रिका तत्कालीन नए साहित्यकारों को हमेशा प्रोत्साहन देती रही, जिसके फलस्वरूप प्रतिभाशाली नवयुवक कवियों का नाम हिंदी साहित्य जगत में, प्रकाश में आया। समय की माँग को ध्यान में रखकर इस पत्रिका ने स्वातंत्र्योत्तर प्रवृत्तियों से संबंधित रचनाओं को भी प्रमुख स्थान दिया है।

विवेकी राय ने 'कल्पना' के संदर्भ में लिखा है- "कल्पना ऐसी पत्रिका है कि सालों-साल रंग बदलती है। हर साल नई-नई सज्जा। उसका एक साल का संपूर्ण ढाँचा महाकाव्य की सर्ग व्यवस्था की भाँति होता है।"[1]

निश्चित रूप से इन कथनों से हम इस पत्रिका की व्यापकता को आसानी से समझ सकते हैं। 'कल्पना' ने अपने दौर के महत्त्वपूर्ण आंदोलनों समसामायिक प्रश्नों जैसे नई कविता, नई कहानी आदि को भी समय-सयम पर महत्त्व दिया है। यदि गौर करें तो 'कल्पना' आद्यांत भाषाई सवालों को लेकर सजग रही है। इससे न सिर्फ साहित्य का विकास हुआ बल्कि भाषा के साथ-साथ व्याकरणिक कोटियों में भी सुधार हुआ। 'कल्पना' में हिंद्देत्तर साहित्य (अनूदित कृतियों) को भी काफी महत्त्व दिया गया। संपादक के नजरिए से हमें इसका उद्देश्य दिसंबर 1950 की संपादकीय से स्पष्ट हो जाता है -"'कल्पना' में हमें अनूदित कृतियों, कहानियों की संख्या इसलिए बढ़ानी पड़ी, इससे दो लाभ होंगे एक तो पाठक को 'कल्पना' में श्रेष्ठ और सुंदर रचनाएँ पढ़ने को मिल सकेंगी और दूसरा हमारे 'वर्तमान कहानी लेखक' इन्हें पढ़कर शायद कुछ हिंदी की

[1] कल्पना पत्रिका और हिंदी साहित्य: विवेक राय, पृ.15

कहानियों के मापदंड को ऊपर उठा सकें। हिंदी कथा साहित्य की सच्ची उन्नति तो उस दिन समझी जाएगी जिस दिन हिंदी की कहानियाँ अपनी मौलिकता एवं अन्य गुणों के कारण दूसरी भाषा की कहानियों के समकक्ष रखी जा सकेगी।"[1]

'कल्पना' के अंकों को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि यह अपने पाठकों की रुचियों को हल्का करके नहीं आँकती और न किसी व्यापारी वृत्ति से उसके निम्नस्तरीय संवेगों का शोषण करना चाहती बल्कि श्रेष्ठ सृजन तक पाठकों की रुचि को ऊपर उठाने और साहित्य की मार्मिक संवेदन प्रक्रिया से सार्थक पुल बनाना चाहती है। जो पत्र-पत्रिकाएँ किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए, कुछ विशेष लेखकों के सहयोग से, कुछ विशेष पाठकों के लिए निकलती हैं उनका संपादन तथा प्रकाशन उतना कठिन नहीं होता जितना व्यापक नीति एवं उद्देश्य को लेकर सर्वसाधारण के लिए निकलने वाली पत्रिकाओं के लिए होता है। इस दृष्टि से 'कल्पना' अपने पूरे दौर में संतुलित नजर आती है।

'कल्पना' ने अपने प्रवेशांक की संपादकीय में ही यह निवेदन किया है कि वह रचनाकार के व्यक्तित्व अथवा प्रसिद्धि पर ध्यान न देकर कृति को महत्त्व देगी, उसका आद्यांत सफल निर्वहन देखने को मिला है। अपने दौर के महत्त्वपूर्ण कवि मुक्तिबोध की कविता 'आशंका के द्वीप अंधेरे में' को 'कल्पना' (नवंबर, 1964) ने काफी महत्त्व दिया। इस अंक के संपादकीय में इस कविता का जिक्र करते हुए संपादक ने लिखा है कि- "मुक्तिबोध की कुछ लंबी कविताएँ, आधुनिक हिंदी काव्य की विशिष्ट देन हैं, जिनमें 'अंधेरे में' प्रमुख है। यह कविता देश के आधुनिक जन-इतिहास का, स्वतंत्रतापूर्व और पश्चात् का एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है। इसमें अजब और अद्भुत रूप और जन एकीकरण है।"[2]

'कल्पना' की यह खास खूबी रही है कि इसने अपने प्रत्येक अंक में पाठकों से संबंधित सूचनाएँ एवं शिकायतों को भी प्रकाशित किया है तथा उसने अपनी कमियों को निवेदन करते हुए स्वीकार भी किया है। 'कल्पना' अपने दौर की अन्य पत्रिकाओं से अलग इसलिए भी है कि इसने उन सवालों को तरजीह दी है जिन पर अन्य पत्रिकाओं का ध्यान नहीं जा रहा था या वे उन सवालों को ठीक तरह से नहीं उठा पा रही थी। ध्यान देने योग्य बात है कि 'कल्पना' एक अव्यावसायिक पत्रिका के रूप में निरंतर विकास की तरफ अग्रसर रही। इसके अंकों में विज्ञापनों

[1] कल्पना (पत्रिका), संपादकीय, दिसंबर 1950, पृ.- 4
[2] कल्पना (पत्रिका),संपादकीय,1964, नवंबर

को न के बराबर जगह मिली है यही कारण है कि इसे अन्य पत्रिकाओं से अलग रखा गया और इसे विशेष ख्याति प्राप्त हुई। वर्तमान समय में यदि पत्रिकाओं को देखा जाय तो कुछ पत्रिकाओं को छोड़कर वह मूलत: व्यवसाय के लिए ही प्रकाशित हो रही हैं। उनका कोई निश्चित ध्येय नहीं है, साहित्य का विकास तो बहुत दूर की चीज है। सचमुच 'कल्पना' का शुद्ध साहित्यिक रूप में अव्यावसायिक प्रकाशन होना व्यवस्थापकों का एक साहस ही था और इसीलिए इसके विलंबित रूप की ओर पाठकों का ध्यान ही नहीं जाता था। इसके प्रवेशांक की संपादकीय को देखें तो ये चीजे और अधिक स्पष्ट हो जाती हैं - "'कल्पना' हिंदी पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि अथवा ग्राहकों का मनोरंजन करके धनोपार्जन करने के उद्देश्य से नहीं निकाली गई है। उसके प्रकाशक तथा संपादकों का एकमात्र ध्येय हिंदी के स्तर को ऊपर उठाना ही रहा है।... हिंदी भाषियों की संख्या के आधार पर संसार की भाषाओं में हिंदी का स्थान दूसरा या तीसरा है, किंतु साहित्यिक विकास की दृष्टि से हिंदी को संसार की प्रमुख भाषाओं में स्थान देना कठिन है। यहाँ तक कि एक-दो भारतीय भाषाएँ भी हिंदी से कुछ ऊपर ही हैं .... 'कल्पना' के संपादक इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हिंदी को उसके महत्त्व के अनुरूप विकसित तथा उन्नत बनाने के लिए, भरसक प्रयत्न करेंगे- भले ही अन्य प्रकार की हानियाँ हों।"[1]

इस दृष्टि से देखें तो 'कल्पना' अपने दौर की सभी पत्रिकाओं से अलग थी और इसका विशेष महत्त्व था। शुरुआती दिनों में 'कल्पना' को पाठकों एवं लेखकों के बीच सामंजस्य बैठाने में समय अवश्य लगा पर जैसे-जैसे 'कल्पना' ने उत्तरोत्तर विकास किया, सारी समस्याएँ हल होती गई। संपादक के नजरिए से यदि हम इसके उद्देश्यों को देखें तो यह निश्चित रूप से अपने समय की महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में से एक थी। यदि हम गौंर करें तो इसके एक ही वर्ष की प्रगति ने पाठकों को बहुत ही आकर्षित किया साथ ही इसे मासिक पत्रिका बनाने की माँग होने लगी। पाठकों की रुचि एवं उत्सुकता को ध्यान में रखते हुए 'कल्पना' को दूसरे वर्ष ही मासिक करना पड़ा। यह इसकी खास उपलब्धि रही। इतना ही नहीं रचनाकारों की भी, प्रकाशन को लेकर काफी तादाद बढ़ी। एक समय ऐसा आ गया कि 'कल्पना' में प्रकाशित होने वाले रचनाकार को बड़ा रचनाकार माना जाने लगा।

---

[1] कल्पना (पत्रिका- प्रवेशांक), अगस्त 1949, संपादकीय से

1.4 भाषा का सवाल और 'कल्पना'

साहित्य और भाषा का संबंध अटूट है। एक अच्छेसाहित्य के निर्माण में भाषा की महती भूमिका होती है। चाहे वह कलापक्ष के रूप में हो या विचार पक्ष के रूप में। हम प्रारंभ से ही देखते आ रहे हैं कि हिंदी पत्रकारिता अपनी भाषाई अस्मिता के प्रति हमेशा से सजग रही है। यदि हम गौर करें तो भारतेंदु काल में हीसाहित्य-सृजन के साथ ही भाषा की समस्या अत्यंत जटिल थी। इस दौर में ऐसे कई आंदोलन हुए जिसमें उस समय के पत्र-पत्रिकाओं ने खुलकर भाग लिया। एक प्रकार से कहें तो हिंदी पत्रकारिता ने हिंदी भाषा के विकास एवं उसकी अस्मिता से जुड़े सवालों को समय-समय पर उठाने की पूरी कोशिश की है। डॉ. रमेशचंद्र त्रिपाठी के शब्दों में कहें तो- "साहित्य अभिरुचि तभी विकसित होती है जब लेखक सरल शब्दों में अपने मानस की अनुभूतियों को सरल व सुस्पष्ट भाषा में कहे, इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि पाठक की संवदेना में लेखक द्वारा कहा गया सब कुछ समा जाय। तात्पर्य यह है कि लेखक और पाठक दोनों के बीच संबंध बना रहे। यह तभी संभव हो सकता है जब लेखक के पास प्रेषणीय क्षमता हो और पाठक के पास ग्राह्यिका शक्ति।"[1]

निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि 'कल्पना' पत्रिका ने अपने दौर में इन चीजों को प्रमुखता दी है। 'कल्पना' का उद्भव ही भारतीय संस्कृति और साहित्य के साथ-साथ हिंदी भाषा के विकास एवं आंदोलन के रूप में हुआ है। इस पत्रिका के लगभग हर अंकों में कहीं न कहीं स्तंभ या कॉलम के रूप में हिंदी भाषा के विकास को लेकर निरंतर चर्चाएँ होती रही हैं। 'कल्पना' की यह खास खूबी रही कि इसने न सिर्फ भाषाई सवाल उठाए बल्कि भाषा के विकास के साथ-साथ साहित्य को भी एक गति प्रदान की। इसने न सिर्फ भाषा को सरल, सुगम और सुबोध बनाया बल्कि पूर्णत: व्याकरण अनुशासित करने का भी पुरजोर प्रयास किया। हिंदी भाषा की समृद्धि में इस दौर की जितनी भी पत्रिकाएँ रही हैं उसमें 'कल्पना' का स्थान अग्रगण्य रहा है। भाषा और व्याकरण के नियमों के संदर्भ में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि कोई भी जीवंत भाषा सतत प्रवाहमान रहती है और वह नए-नए शब्दों से स्वयं को समृद्ध करती है। इस तरह की पूरी निरंतरता 'कल्पना'

[1] पत्रकारिता के सिद्धांत:डॉ. रमेशचंद्र त्रिपाठी-141

में आद्यांत बनी रही है। 'कल्पना' ने जहाँ साहित्यिक अभिरुचि को प्रोत्साहित किया, नवचेतना का विकास किया वहीं शिल्पगत क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है।

'कल्पना' के अप्रैल, 1950 की संपादकीय को देखने से हमें यह पता चल जाता है कि इस पत्रिका का ध्यान न सिर्फ साहित्य का विकास करना था बल्कि उसका उससे कहीं ज्यादा जोर व्याकरण एवं भाषा की शुद्धता पर भी रहा है- "हिंदी के व्याकरण हिंदी शब्दों के रूपों और उनके हिज्जों, वाक्य-रचना आदि से संबंधित बीसियों बातें ऐसी हैं- जिनके विषय में अभी तक मतभेद अथवा संदेह बना हुआ है। विचारशील लेखक और विद्वान समय-समय पर इस संबंध में लिखते रहे हैं और हिंदी के स्वरूप को स्थिरता देने की चेष्टा करते रहे हैं, किंतु जैसी स्थिरता एवं नियमितता एक सुविकसित भाषा में होनी चाहिए, वैसी हिंदी में अभी तक नहीं आ सकी है। इसका कारण जो भी रहा हो, हिंदी को एक सुनिश्चित, व्यवस्थित रूप देने की आवश्यकता अब, हिंदी के राष्ट्रभाषा स्वीकृत कर लिए जाने के बाद, पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। अब तक हिंदी केवल प्रांतीय भाषा थी, उसके स्वरूप को स्थिर करना या न करना हिंदी भाषियों का अपना मामला, अपना धंधा था। किंतु अब हिंदी पूरे राष्ट्र की चीज है, उसका स्वरूप क्या है?, क्या नहीं?, इससे अ-हिंदी भाषियों को भी उतना ही प्रयोजन है, जितना हिंदी भाषियों को।"[1]

एक प्रकार से देखें तो 'कल्पना' का हिंदी भाषा के प्रति रवैया हमेशा प्रगतिशील ही रहा है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ उसके सही-सही मूल्यांकन के प्रति 'कल्पना' ने साहित्यकारों एवं पाठकों को हमेशा सजग करने की कोशिश की है। अप्रैल,1952 की संपादकीय 'हिंदी के प्रति सही दृष्टिकोण की आवश्यकता' को देखें तो यह बात और अधिक पुष्ट हो जाती है- "हिंदी के प्रति हमारी नवविकसित चेतना का तदुपयोग तभी हो सकेगा, जब हम हिंदी के प्रति अपना सही दृष्टिकोण बना सकेंगे। यहाँ सही दृष्टिकोण से हमारा तात्पर्य हिंदी के संबंध में उस राष्ट्रव्यापी सर्वमान्य विकार-रहित धारणा से है, जिसके द्वारा हिंदी और हिंदी का व्यवहार करने वाले हम सभी के साथ उचित न्याय तथा राष्ट्र का योग्य मानसिक विकास हो सके।"[2]

इस लेख के अंत में निवेदन भी किया गया है कि "हिंदी भाषी हो, चाहे अहिंदी भाषी, उत्तर भारतीय हो, चाहे दक्षिण भारतीय, नेता हो चाहे, जनता, साहित्यकार हो, चाहे साहित्यप्रेमी

[1] कल्पना (पत्रिका) अप्रैल, 1950, संपादकीय से
[2] कल्पना (पत्रिका),अप्रैल, 1952, संपाकदीय से

हिंदी के सही मूल्यांकन के लिए सभी के दृष्टिकोण में अब आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता है।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कल्पना' अपने पूरे दौर में हिंदी भाषा और उसके सवालों को लेकर हमेशा जूझती रही है, इतना ही नहीं उसके इस प्रयास से उसे अधिकाधिक सफलता भी मिली है।

'कल्पना' के तीसरे अंक की संपादकीय में भी हिंदी के स्तर को ऊँचा उठाने की बात की गई है। इसमें मुख्य रूप से विभक्तियों को अलग-अलग करने या एक ही में लिखने की लंबी बहस छिड़ी। 'कल्पना' का रुझान विभक्तियों को अलग-अलग रखना ही रहा है। 'रामने', 'जलसे', 'डरने' आदि शब्दों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए 'कल्पना' ने यह तर्क दिया कि इस तरह के शब्दों को सीखने समझने में अहिंदी भाषी लोगों को असुविधा होगी इसलिए हम इसे जितना सरलता से प्रस्तुत कर सकें, करें जिससे उतना ही अधिक सरलता से इसे गैर हिंदी प्रदेश के लोग भी समझ सकें। 'कल्पना' पत्रिका की यह विशेषता रही है कि इसमें भाषा को लेकर निरंतर कोई न कोई आंदोलन का रूप बना रहा है। चाहे वह व्याकरण को लेकर हो, वर्तनी को लेकर या फिर भाषा से जुड़े अस्मिता को लेकर। विवेकी राय के शब्दों में कहें तो- "इसके प्रत्येक अंकों में सिर्फ संपादकीय ही भाषा से नहीं जूझता बल्कि भीतर निबंधों में भी इसका सार्थक स्पर्श रहता है। प्रयोग और वर्तनी आदि के विषय में 'कल्पना' की एक सुदृढ़ नीति रही और भाषा शुद्धता के आंदोलन को लेकर वह उत्तरोत्तर अग्रसर होती गई। व्याकरण की समस्या को रचनात्मक स्तर पर प्रभावशाली रूप में सामने प्रस्तुत करने की दिशा में उसका मूल्यवान योगदान रहा है।"[2]

हम देखते हैं कि स्वतंत्रता की समस्या हल हो जाने के बाद देश के सामने सबसे बड़ी समस्या भाषा की ही थी इसलिए उस समय आवश्यकता इस बात की थी कि हिंदी को शीघ्रातिशीघ्र भारतीय हृदय के विविध विचारों को व्यक्त करने में समर्थ बनाया जाए तथा हिंदी भाषा के स्वरूप को स्थिरता प्रदान की जाए। 'कल्पना' उस दौर में इस काम को लेकर काफी अग्रसर थी। फरवरी, 1952 में सरस्वती प्रसाद चतुर्वेदी का एक लेख 'व्याकरण संसोधन' प्रकाशित हुआ जिनमें हिंदी भाषा से जुड़े सवालों, व्याकरण आदि पर काफी जोर दिया गया।

---

[1] कल्पना (पत्रिका) अप्रैल, 1952, संपाकदीय से

[2] कल्पना और हिंदी साहित्य: विवेकी राय, पृ.-19

उनके लेख में एक चीज बड़ी प्रमुखता से सामने आई वह यह है कि - "भारतीय राष्ट्रभाषा का स्वरूप, भारत की विभिन्न भाषाओं का मिश्रण होना चाहिए।"[1]

उन्होंने हिंदी भाषा के संबंध में यह लिखा है "यहाँ हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि हिंदी के स्वरूप को स्थिर करने का यह अर्थ नहीं कि हम उसे इस प्रकार जकड़ दें कि उसका स्वाभाविक विकास ही रुक जाए। संस्कृत भाषा के संबंध में पाणिनि के अनुयायियों ने यही किया था, इसी से संस्कृत भाषा आगे चलकर शास्त्र भाषा या शिष्ट भाषा ही रही, जन भाषा नहीं। हिंदी को तो समस्त देश के निवासियों की व्यवहार भाषा बनना है। अत: उसके विकास का मार्ग खुला रखना चाहिए।"[2] उसी दौर में शब्द-रूपों के निश्चितता के संदर्भ में कई सवाल उठे। हिंदी के कुछ शब्दों को देखा जाय जैसे- 'लिये', 'लिए', 'चाहिये', 'चाहिए', 'अँगुली', उँगली', 'रेडिओ', 'रेडियो' के संदर्भ में, इनकी निश्चितता एवं स्थायित्व का सवाल भी उस दौर के प्रमुख प्रश्न थे।

नवंबर,1952 में भाषा एवं व्याकरण से जुड़े सवालों के संदर्भ में मिश्रीलाल जैन के आलेख 'हिंदी में दोहरे रूप' को 'कल्पना' ने प्रमुख स्थान दिया। इसमें उन्होंने उक्त सवालों के संदर्भ में लिखा है- "हिंदी में क्रियाओं के दोहरे रूप चलते हैं- आयी-आई, आयेगा-आएगा, गयी-गई, गये-गए, हुये-हुए। इनमें पहले रूप तो व्याकरण सम्मत हैं... और दूसरा रूप उच्चारण के अनुसार हैं। हिंदी की यह विशेषता है कि वह उच्चारण के अनुसार लिखी जाती है। इस दृष्टि से शब्दों के दूसरे रूप हुए-आई, गई, आएगा, गए, हुए जो व्याकरण के पक्षपाती हैं वे पहला रूप ठीक समझते हैं और जो उच्चारण के अनुयायी हैं वे दूसरा। वास्तव में ध्वनि प्रधान भाषा में दूसरा रूप ही ठीक है। अत्यधिक प्रचलित होने पर व्याकरण को भी वह रूप ठीक मानना पड़ेगा, क्योंकि व्याकरण का मुख्य आधार भाषा का लिखित रूप ही है।"[3]

'कल्पना' ने साहित्य को जितना महत्त्व दिया है उतना ही भाषा को भी, क्योंकि बगैर भाषा के निर्माण के बिना साहित्य का विकास असंभव था। इस मायने में 'कल्पना' अपने दौर की अन्य पत्रिकाओं से अलग भी खड़ी होती है।

'कल्पना' के दूसरे वर्ष 'हिंदी की तात्कालिक आवश्यकताएँ' शीर्षक से टिप्पणी कई-कई महीनों तक चलती रही। जिसने अपने समय के कई महत्त्वपूर्ण सवालों से टकराने की कोशिश भी

---

[1] कल्पना (पत्रिका), फरवरी, 1952 पृ.- 101
[2] कल्पना (पत्रिका), फरवरी 1952, पृ.101
[3] कल्पना (पत्रिका), नवंबर, 1952 पृ. 801

की। इसमें पाठकों एवं संपादक के बीच एक लंबी बहस भी चली। प्रयोग और वर्तनी आदि के विषय में 'कल्पना' की एक सुदृढ़ नीति रही और वह भाषा-शुद्धता के आंदोलन को लेकर उत्तरोत्तर अग्रसर होती गई। दिसंबर ,1954 में हिंदी व्याकरण की समस्या को 'कल्पना' ने गंभीरता से लिया। इस वर्ष अक्टूबर-नवंबर में भी इन सवालों को उठाया गया। नवंबर, 1957 में 'यह बेचारी हिंदी' नाम से एक महत्त्वपूर्ण स्तंभ की शुरुआत हुई, इसके लेखक कात्यायन थे। इसमें इन्होंने हिंदी व्याकरण, वर्तनी एवं शब्दगत त्रुटियों को लेकर एक लंबीबहस छेड़ी तथा सुधार एवं सुझाव संबंधित अनेक टिप्पणियाँ भी की। इस स्तंभ ने न सिर्फ हिंदी भाषा के परिमार्जन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि हिंदी भाषा के विकास में भी विशेष योगदान दिया। वास्त्र में इस पत्रिका ने जिस प्रकार से भाषा के विकास में अपना योगदान दिया है, वह अविस्मरणीय है।

उपसंहार

'कल्पना' पत्रिका का साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस पत्रिका का उद्भव ही भारतीय संस्कृति, साहित्य के साथ-साथ हिंदी भाषा के विकास एवं आंदोलन के रूप में हुआ है। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ उसके सही मूल्यांकन के प्रति 'कल्पना' ने साहित्यकारों एवं पाठकों को हमेशा सजग करने की कोशिश की है। इसने न सिर्फ भाषा को सरल, सुगम, और सुबोध बनाया बल्कि व्याकरण अनुशासित करने काभी पुरजोर प्रयास किया। इसने साहित्य को जितना महत्त्व दिया उतना ही भाषा को भी, क्योंकि बगैर भाषा के निर्माण के साहित्य का विकास असंभव था। इस मायने में 'कल्पना' अपने दौर की अन्य पत्रिकाओं से बिल्कुल अलग है। 'कल्पना' ने एक तरफ जहाँ साहित्यिक अभिरुचि को प्रोत्साहित किया, नवचेतना का विकास किया, वहीं शिल्पगत क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। यदि उस दौर की कलात्मक अभिव्यक्तियों को देखा जाय तो इस दृष्टि से 'कल्पना' पत्रिका काफी सशक्त नजर आती है। प्राचीन मुगलकालीन चित्रों के साथ-साथ माडर्न पेंटिंग्स (कला) से संबंधित कई दुर्लभ चित्रों को सामने लाने में इस पत्रिका का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'कल्पना' अपने दौर की अकेली ऐसी संतुलित साहित्यिक पत्रिका रही है जिसने अपने प्रत्येक अंक में साहित्य की लगभग सभी विधाओं (कविता,कहानी नाटक, उपन्यास, निबंध आदि) को एक साथ समायोजित करने का प्रयास किया है। विधागत एवं विषयगत दोनों स्तरों पर यह पत्रिका अपने दौर में पूरी तरह समृद्ध रही है। 'कल्पना' ने न केवल हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में बल्कि समग्र हिंदी साहित्य के विकास की दृष्टि से भी कई नए मानदंडों को स्थापित किया।

निबंध विधा के विकास में भी इस पत्रिका का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वातंत्र्योत्तर युगीन निबंधकारों का अपना एक अलग ही वैशिष्ट्य है। इस दौर के निबंधों में विचारों की प्रधानता होने के बावजूद अनुभूति की तरलता का पर्याप्त अंश है। 'कल्पना' ने अपने समय के साहित्यिक , सांस्कृतिक, सामाजिक और ललित- कला से संबंधित निबंधों एवं निबंधकारों को न सिर्फ सामने लाने का काम किया बल्कि इनके विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालाँकि इस दौर की अन्य पत्रिकाओं में भी निबंध विधा का प्रकाशन हो रहा था पर जितनी गंभीरता से 'कल्पना' ने इस विधा को महत्त्व दिया है, अन्य पत्रिकाओं ने नहीं। 'कल्पना' ने निबंधों के माध्यम से जिन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आर्थिक सवालों को उठाने की कोशिश की है, वे बहुत ही महत्त्वपूर्णहैं। इन निबंधकारों की रचनाशीलता एवं उसमें उठे सवालों को देखें तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि वे अपनी परंपरा, समाज और संस्कृति से विमुख

होने वाले रचनाकार नहीं है। मनुष्यता ही उनके निबंधों का केंद्रीय विषय है। 'कल्पना' ने इन सारे सवालों को एक साथ लेकर निबंधों के माध्यम से सभ्यता एवं संस्कृति को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने की पूरी कोशिश की है। इस पत्रिका ने रचनाकार को महत्त्व न देकर सिर्फ रचना को महत्त्व दिया है। यह इसकी सबसे प्रमुख विशेषता रही है। शायद यही कारण है कि इसमें निरंतर नए-नए रचनाकारों का आगमन दिखाई देता है। 'कल्पना' में साहित्य के अलावा कई ऐसे नए विषय भी सामने आए जो समय-सापेक्ष प्रासंगिक रहे हैं।

'कल्पना' ने न सिर्फ हिंदी साहित्य बल्कि भारतीय एवं विदेशी साहित्य को भी वैश्विक धरातल पर रेखांकित करने की पूरी कोशिश की है। इसमें मुख्य रूप से साहित्य, कला, इतिहास, एवं संस्कृति जैसे विषयों की गंभीर समस्याओं पर नए्नए दृष्टिकोण से मौलिक विचार प्रस्तुत किए ही गए साथ ही निजी अनुभूतियों एवं भावनाओं का भी प्रकाशन अनेक रचनाकारों द्वारा हुआ है।

'सरस्वती' के बाद 'कल्पना' ही ऐसी पत्रिका है जिसने समग्रता एवं विविधता में सारे प्रश्नों एवं सरोकारों को गद्य- पद्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से उठाया। गैर हिंदी भाषी क्षेत्र से निकलने वाली इस पत्रिका ने साहित्य के विकास में जो योगदान दिया है वह अब तक की हिंदी भाषी क्षेत्र से निकालने वाली पत्रिकाओं के लिए चुनौतीपूर्ण है।

हिंदी आलोचना के विकास में 'कल्पना' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आलोचना के आरंभिक युग में सामान्यतः लोगों के मन में यह धारणा बनी हुई थी कि आलोचना का काम किसी कृति विशेष का गुण-दोष विवेचन मात्र है , 'कल्पना' ने इस मानसिकता को तोड़ने का काम किया। इसमें मुख्य रूप से सैद्धांतिक और व्यावहारिक लेखों की प्रमुखता रही। सैद्धांतिक लेखों के जरिए 'कल्पना' ने न सिर्फ नए मानदंडों को स्थापित किया बल्कि इन विधाओं पर नए ढंग से सोचने-समझने की सूझ भी विकसित की। यह पत्रिका इस संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है कि इस समय आलोचना विधा अपनी विकासशील अवस्था में थी, दूसरे शब्दों में कहें तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद सैद्धांतिक आलोचना का कोई निश्चित स्वरूप नहीं दिखाई दे रहा था , ऐसे समय में 'कल्पना' ने इसे पुनर्जीवित करने का काम किया है। सैद्धांतिक और व्यावहारिक लेखों का जैसा संतुलित सामंजस्य इस पत्रिका में दिखाई देता है इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी आलोचना को एक ठोस आधार प्रदान करने में इस पत्रिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 'कल्पना' ने अपने लेखों (सैद्धांतिक और व्यावहारिक) के जरिए न सिर्फ रचना के संदर्भ एवं

रचनाधर्मिता को सामने लाया बल्कि रचना किस प्रकार की होनी चाहिए एवं उसकी समाज में क्या प्रासंगिकता है, इस ओर पाठकों एवं रचनाकारों का ध्यान आकृष्ट किया है।

कविता विधा के विकास में भी 'कल्पना' पत्रिका की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस पत्रिका में प्रकाशित कविताओं में द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक काव्य से लेकर नई कविता एवं उससे आगे तक का जीवंत इतिहास देखा जा सकता है इस दौर की कविताओं की मुख्य विशेषता रही है कि इनमें नवीन विषयों का समावेश विषयवस्तु के स्तर पर तो हुआ ही साथ ही शिल्प के स्तर पर भी नवीनता दिखी। यह नवीनता न सिर्फ भाव के स्तर तक सीमित रही बल्कि भाषा के स्तर पर भी दिखी।

जहाँ तक कहानी विधा के विकास को देखा जाय तो इस विधा के विकास में भी 'कल्पना' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। नई कहानी का उद्भवकाल ही इसका प्रकाशन वर्ष है। पुराने कहानीकार जिस प्रकार से जीवन और जगत को समाजवादी, नैतिकतावादी, रूमानी या मनोविश्लेषणवादी नजरिए से देख रहे थे, 'कल्पना' ने न सिर्फ इन प्रतिमानों को तोड़ने का काम किया बल्कि विषय और शिल्प दोनों स्तरों पर कहानियों को नया स्वरूप प्रदान करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने न सिर्फ हिंदी कहानियों को बल्कि भारतीय एवं विदेशी कहानियों को भी हिंदी अनुवाद के माध्यम से सामने लाने का काम किया। यह इस पत्रिका की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है।

एकांकी एवं नाटक के विकास की दृष्टि से भी 'कल्पना' पत्रिका अत्यंत संमृद्ध है। 'कल्पना' के प्रथम अंक (अगस्त 1949) में प्रकाशित एकांकी और सन् 1959 में प्रकाशित किसी एकांकी को आमने-सामने रख दिया जाय तो इसके विकास की दिशा एवं गति का सही मूल्यांकन हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि एकांकी-नाटक के विकास के इतिहास का अध्ययन करने के लिए 'कल्पना ' एक उपयुक्त माध्यम है।

वास्तव में इस पत्रिका ने जिस प्रकार से साहित्य विधा के साथ-साथ भाषा के विकास में अपना योगदान दिया है वह न सिर्फ अविस्मरणीय है बल्कि वर्तमान समय की पत्रिकाओं के लिए चुनौतीपूर्ण भी है।